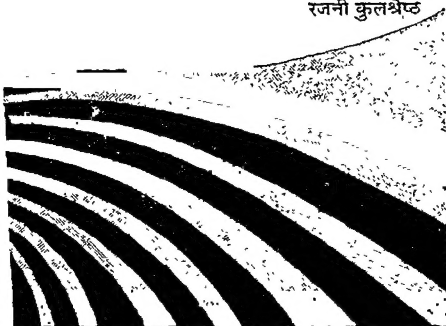
रेत में वृन्दावन

रजनी कुलश्रेष्ठ



अरविन्द प्रकाशन
उदयपुर

रेत में वृन्दावन (कविता संग्रह)

—रजनी कुलश्रेष्ठ



राजस्थान साहित्य अकादमी के आर्थिक सहयोग से पाण्डुलिपि प्रकाशन योजना के अन्तर्गत प्रकाशित ।

प्रकाशक अरविन्द प्रकाशन, उदयपुर

आवरण शिल्पी
श्रीनिवासन अय्यर

मूल्य चालीस रुपये मात्र

संस्करण प्रथम

मुद्रक [illegible] प्रिन्टर्स, तिलक नगर, जयपुर

समर्पण

जिसने मुझे
सृजनधर्मिता के लिए आस्थावान
व्यक्तित्व दिया
अपनी उमी ममतामयी 'माँ' को,



उन क्षणों को,
जिनमें मेरी कविताओं का
जन्म हुआ !



आगे पीढ़ी को
राष्ट्र की प्रगति के
संवाहक क्षणों को
अतीत की अरुणाई को
दर्शन, शिल्प, कला, राजनीति को,
जो वर्तमान की संदर्भिका बने
तरलित संवेदना को,
मानव की मानवता को,



आत्मकथ्य

'रेत में वृन्दावन' कविता संग्रह प्रस्तुत करते हुए मुझे कवि कुलगुरु कालिदास की वह काव्य पंक्तियाँ स्मरण हो आई हैं कि, 'मैं कच्चे घड़े की सहायता से विशाल महासागर को पार करने का प्रयास कर रहा हूँ।'

मेरी आत्मा के अँसुआरे रंगो में जीवन और जगत की मधुर एवं कटु स्मृतियों का प्रकम्पन परिव्याप्त है। सत्य, शिव और सुन्दर की एक खोज है इनमें !

महुये सा महका ये मन जब आदर्शों और स्वप्नों के महलों को टूटता देखता है, तो यथार्थ की आँच में तपकर अनुभव कुन्दन बन जाते है। इसी पृष्ठभूमि पर नारी मन की अनुभूतियाँ अभिव्यक्ति पा गई है। जीवन का कार्य व्यापार, नियति की विडम्बना एवं निष्कर्षात्मक जीवन अनुभव, दर्शन व्यक्त हुआ है इनमें !

एक बात और,—मैंने अपनी कविताओं को लिखकर स्वयं यह महसूस किया है कि इनमें अतीत का व्यामोह मुझे पकड़े रहा है, चाहे वह देश-स्तर पर हो अथवा व्यक्ति स्तर पर ! मैं वर्तमान की ओर प्रखर दृष्टिपात करके भी अतीत से मुक्त नही हूँ; किन्तु मेरे अतीत से विमोहित प्राण युग के निकष पर उभरते प्रश्नचिह्नों के प्रति भी उतने सजग रहे हैं।

विश्वास जीवन का आधार है, किन्तु खण्डित विश्वासों की पीडा ने जब मन को अथाह वेदना से भर दिया तब आँसुओं की नमी, हृदय की कल्पनाएँ व आदर्श स्वप्नों का इन्द्रधनुष-ये मेरी विभोर सर्जना के जन्मदाता बन जीवन्त और शाश्वत बन गये हैं।

इस संसार में कुछ अनाम, पावन किन्तु मोहक स्मृतियाँ पाई हैं मैंने !.... अज्ञात, अनाम काल्पनिक प्रियतम को,....अपने सत्य को, इन कविताओं में सम्बोधित किया है। बाकी सब भोगा हुआ यथार्थ है। कुछ दृश्यबंधों को मैंने कल्पना में पूरा घटित होते हुए देखा है उसे कागज़ पर उतार दिया, शब्दों में बाँध कर। मेरे काल्पनिक चाक्षुष संवेदन की प्रतीक हैं ये अकिंचन कविताएँ !

इन सबसे ऊपर उठकर उस विराट, अतीन्द्रीय, चेतन सत्ता के मधुमय रूप को समर्पित आशा की किरणों से जगमगाती एक याचना है उस नटनागर से-कि, वह मेरी काव्यात्मा का रसाभिषेक कर मेरे अन्तर्मन को मानव संवेदना के आलोक भर दे !

श्री कृष्ण जन्माष्टमी
14, अगस्त 1990

रजनी कुलश्रेष्ठ

रेतीले क्षणों में मन-वृन्दावन की भाव यात्रा

'रेत में वृन्दावन' संग्रह की इन कविताओं का पढ़ना अपने आप में अनं
तरह का एक सुखद अनुभव है। 'रेत' और 'वृन्दावन' दो छोर हैं जिनके बी
पाठक कवयित्री रजनी कुलश्रेष्ठ की अनुभूति-यात्रा में एक संवेदनशील सहयात्रि
की तरह अपनी स्थिति तलाश कर सकता है।

कहीं कोमल, कहीं कठोर, कहीं कल्पनात्मकता तो कहीं यथार्थपरकता वे
ताने-बाने से बुनी इन रचनाओं में कवयित्री ने जीवन के विविध रंगो औ
संकल्पनाओं को रूपायित किया है। लेकिन ऐसा करते हुए वे हमारे आज वे
जीवन की समस्याओं से विमुख नहीं हुई हैं। जिन सामाजिक सरोकारों से किसी
भी रचनाकार को जूझना चाहिए, जिन असंगत स्थितियों पर उसे अंगुली उठान
चाहिए, जिन नागवार हालात पर उसे नाराजगी और असहमति जाहिर करनं
चाहिए, इस संग्रह की कवयित्री उन्हें बखूबी पहचानती ही नहीं बल्कि उन्हें पूरं
ईमानदारी से अभिव्यक्त करने की कोशिश भी करती है। 'युग बोध', 'युद्ध क
हो जाता है अनिवार्य' 'कैसे है ये लोग', 'अहम की रसिस्यों', 'अनुभूति', 'भूख
और 'पूर्ण विराम' जैसी कविताओं मे कवयित्री की चिन्ता और आक्रोश प्रक
हुआ है मानव और मानवता-विरोधी स्थितियों के प्रति।

फिर भी मैं यह नहीं कहूँगा कि आक्रोश और सामाजिक चिन्ताएँ इ
संग्रह की कविताओं का मूल स्वर है। रजनी जी की कविताओं का मूल स्व
उनकी आत्म केन्द्रितता है। वे स्वयं 'आत्म कथ्य' में स्वीकार करती हैं-
"मैंने अपनी कविताओं को लिख कर यह महसूस किया है कि इनमें अतीत क

व्यामोह मुझे पकड़े रहा है, चाहे यह देश-स्तर पर या व्यक्ति-स्तर पर। मैं वर्तमान की ओर प्रखर दृष्टिपात करके भी अतीत से मुक्त नहीं हूं; किन्तु मेरे अतीत से विमोहित प्राण युग के निकष पर उभरते प्रश्न चिह्नों के प्रति भी उतने ही सजग रहे हैं।"

एक गहरी सच्चाई के साथ की गई यह स्वीकारोक्ति हमे रजनी जी के निर्मल चित्त से परिचय कराती है। यह परिचय उन की कविताओं को समझने से हमारी मदद करता है। इन कविताओ में व्यक्त वेदना का संसार हमें उनके कल्पना-लोक तक ले जाता है जहां आंसू भी हैं, मुस्कानें भी है शिकवे-शिकायत भी है, मिलन माधुर्य भी है तो विरह-दग्ध उर की पुकार भी है। सतही तौर पर इन कविताओ के बारे मे यह टिप्पणी की जा सकती है कि ये छायावादी रूमानियत से सराबोर कविताएँ है किन्तु वास्तव में ऐसा नहीं है। संवेदन से अभिव्यक्ति तक आते-आते कोई रचना कितने रूपाकार ग्रहण करती है यह इन कविताओं मे खूब अच्छी तरह से रेखांकित किया जा सकता है। रचनाकार एक अतरंग आत्मीय संस्पर्श से हमारी परिचित संवेदना-स्थितियों को भी इस तरह चित्रित करता है कि उनमे से बिलकुल नये तरह के अर्थ अंकुराने लगते हैं, यही रचनाकार का वैशिष्ट्य है जो किसी धारा विशेष के बीच भी उसकी अलग पहचान बनाता है।

मेरा ऐसा मानना है कि रजनी जी का रचनाकार अपने इस वैशिष्ट्य को बनाये रखने मे सक्षम है इसलिए उनकी ये कविताएँ पाठकों को आनंदित भी करेंगी और आन्दोलित भी।

यह आशा करना व्यर्थ नही होगा कि 'रेत मे वृन्दावन' के पाठक प्रांजल भाषा मे अभिव्यक्त इन रेतीली और वृन्दावनी अनुभूतियों की मार्मिकता का रसास्वादन करते हुए इस कृति का हृदय से स्वागत करेंगे।

35, खारोल कॉलोनी
उदयपुर (राजस्थान)
बसन्त पचमी, 1991

भगवतीलाल व्यास

अनुक्रम

आठ लघु कविताएँ



ओ, चिर–सुन्दर !

जीवन के संवेद्य क्षणों को
तुम वाणी दो
ओ, चिर-सुन्दर !

नव-नव रूप गन्ध से भरकर
मेरे गीतों को स्वर दो
ओ, चिर-गायक !

मुखरित प्रज्ञा में
नवशिल्प का वैभव भर दो
ओ, चिर-सर्जक !

ऐसा मोहन-राग सुना दो
मेरे अन्तरतम के गायक !
तमस छिन्न कर
ज्योती-पुञ्ज बन
आलोक लुटा दो
ओ, ज्योतिर्मय !

अपने नेह-राग से रंजित
मानवता को कर दो
मधुरस-सिंचित्
ओ, चिर मधुमय !

शब्द-उवाच

एक थपथपाहट हुई
मेरे मन के द्वार पर
'तुम कौन ?'...........
'मैं शब्द हूँ
सरपट घोड़े सा
दौड़ता
आ गया हूँ
भावों के पंखो पर बैठा
अपने साथ
स्वप्निल, तन्द्रिल, तरलित अनुभूतियाँ
लाया हूँ
जब-जब-'
मैं, तुम्हारी काव्य-साधना का
साधन बनूँगा
तब-तब-
मेरे अस्तित्व की
एक बार फिर सार्थकता हो जायेगी
ओ, शब्द-शिल्पी !
मैं बार-बार
सार्थक होना चाहता हूँ
मैं शब्द हूँ
तुम्हारे द्वार आया हूँ ।'

सपने

हृदय की बाँसुरी पर
मधुर धुन से बजते
नवगन्ध नवरूप
चाँदनी घुले से
रंगीन सपने ।

रेशमी वायु से प्राणवान
कोयल की कूक से
सुख की हरीतिमा से
जीवन के पृष्ठ पर
अंकित हैं सपने ।

मन के क्षितिज पर
घुमड़ते मेघ से
बुद्धि–वन में हो रहे
धूमायित सपने ।

प्रथम रवि रश्मि से
अभिनन्दन के ग्रन्थ से
उद्घाटित हैं सपने ।

आस्था और विश्वास से
निखरते हैं सपने ।

क्रमशः

हर रंग में जीवन को
रंग देते सपने ।
इन्द्रधनुषी भावों के
ये मेरे सपने ।

ज़िन्दगी

आस्थाओं की पहाड़ी के पीछे से उगता
विश्वास का सूरज है ज़िन्दगी

कृष्ण के चातुर्य सी
भीष्म की प्रतिज्ञा सी
कर्ण की विडम्बना सी
राम के वनवास सी
और/शबरी का प्रेम है ज़िन्दगी

हास और परिहास का
चुभन और आनन्द का
पतझड़ की उदासी और
बसन्त का स्वागत है ज़िन्दगी

सागर की लहरों में
आलोड़न विलोड़न का
घृणा और प्यार का
मान और मनुहार का नाम है जिन्दगी

छल और प्रपंच का
दाँव और पेंच का
घात और प्रतिघात का परिणाम है ज़िन्दगी

उन्मुक्त उड़ान सा
पिंजरबद्ध मैना का,

क्रमशः

सन्दली खुशबुओं का
नीम की निबोलियों का नाम है ज़िन्दगी

परिमापाओ की मीमा में
कब बँध सकी ज़िन्दगी

उपमान इतने सीमित
और विराट इतनी जिन्दगी

तुम्हारी-याद

तुम्हारी याद !
क्रूर कौरवों द्वारा
रचा गया;
एक चक्रव्यूह है
जिसमें फँसकर
मैं, मेरी आत्मा
मेरा अन्तर्मन
सभी कुछ तड़प उठता है ।
तुम्हारी याद !
एक बेचैन बिलखती
बेनूर रात है
जिसमें सब कुछ
खो जाने का
अथाह दर्द भरा है ।
तुम्हारी याद !
एक स्वप्न है ऐसा
जो हर गुजरते
मौसम के
दूर हो जाता है ।

पूर्ण विराम

रात की स्याह् काली परतो को देखकर
सोचती हूँ
इन वनवासियो का
अन्धकार भी
वैसा ही है
फिर सोचा–
इन अँधेरो को
उजालों मे बदल दूँ
बड़े–बड़े जतन किए
लम्बे भाषण दिये
उपदेशो की झड़ी लगा दी
पर–
उनके मुँह से निकला
यह वाक्य–
"हम तो ऐसे ही भले हैं।"
मेरे कार्य कलापों पर
प्रश्न चिह्न लगा जाता है
जो धीरे–धीरे
'पूर्ण विराम' मे बदल जाता है।

युग–बोध

श्येन प्रभंजनों से घिरे
एक अंधे–युग की समूची
त्रासदी भोगते हम !
गिद्ध के पंखों सा भयावह-अँधेरा
और अँधेरे में भटकते हम !
हम,
जो आदम और हव्वा की सन्तान
हम,
जो मनु और श्रद्धा की
सपनीली आँखों के
अरमान हैं।
हमने बेच दिया है
मनु के सपनों को
और आकाश की चादर फाड़कर निकले
हमारे ही कुछ हाथ
अपनी अस्मिता की तलाश में
कस्तूरी–मृग से भटकते रहे
जिन्दगी डोर कटी पतंग सी
तड़फड़ाती रही
और दर्द की कोख से
टूटे अहसास

क्रमशः

जन्म लेते रहे
युवा सपनों में जगमगाती
रोशनी की नदी,
कँपकँपा कर रह गई

और हम अंधी आस्था के
तमतमाते सूरज की उल्का लेकर
समाज की मान्यताओं के
दर्दीले पत्थरों में जीते हुए

एक स्वर्ण–युग की कल्पना कर उठे
ढूंढते रहे उस ज्योति–पुरुष को
जो समाज को रोशनी की एक किरण दे
पर नहीं !

दोहरी मानसिकता का दर्द
और त्रासद गाथाओं के
करुण रास्तों से गुजरती
हमारी इस यात्रा–कथा में
हमारे साथ एक पूरी पीढ़ी
पूरे युग की पीड़ा भोगती
विकास की पताका थामे
अंधेरे मे भटकती रही
और आम आदमी !

जिन्दगी की तकलीफ देह राजनीति का बोझ
अपने कन्धो पर उठाए
वोटों के समीकरण में उलझा रहा
ओ, मनुपुत्र, उठो !

रेत में पलाश खिलाने की हठधर्मिता मत करो
ये पराजित आदमी
अनुभूतियों के प्रश्न का
समाधान नहीं, समझौता है !

क्रमशः

धर्म की ग्राड में
क्रूरता की दीवारों पर
हिंसा के विज्ञापन लगाता
युग-संकट आ गया
दिशाएँ भैरवी बनकर नाच रही है
तुम्हें सौगन्ध है
राम-कृष्ण की, बुद्ध और महावीर की,
ईसा और मोहम्मद की
नानक और कबीर की
उठो,—
इस मरण के पर्व को
तुम चुनौती मान लो
हाथों मे
मानवता की खुशबू रचाकर
हर घर के आँगन में
आशा का दीप सजो दो
जिसमे, तुम्हारी आत्मा का प्यार हो
हृदय का ज्ञान
जीवन का संगीत
और आगत का गीत हो
निष्ठा हो, प्रतिष्ठा हो
सद्‌गुणों का विकास हो
और—
"तमसो मा ज्योतिर्गमय" का
वेदगान हो।

सहचरी

जीवन की कटुताएँ
विभीषिकाएँ
भीषण दोषारोपण
लांछन, प्रतारणाएँ
आँसुओं से भीगे
मेरे सृजनधर्मी
व्यक्तित्व को
तुमने
सदैव अपना विभोर ममत्व लुटाकर
टूटने से बचाया है ।

घुटन और पीड़ा के
दर्दीले क्षणों को
तुमने सदैव मिठास से भर
जीवन के प्रति आकर्षण बढ़ाया है
ओ, मेरी प्रकृति सहचरी ।

तुम एक ही साथ
बहुरंगे आयामों में निखरती हो
अपने इन ऊँचे-ऊँचे
नुकीले पर्वतों से
तुमने मुझे
स्वाभिमान का पाठ पढ़ाया है

क्रमशः

तुम्हीं ने मुझे
अपने प्रतीक बिम्वों से
तादात्म्य कर
कभी अन्याय प्रतिरोधी
कभी सिद्धान्तवादी
कभी अन्तर्मुखी और
कभी बहिर्मुखी बनाया है ।
अपने दर्द के सागर
और आँसुओं के सैलाब को छुपा
सबकी सतरंगी खुशियों के लिए
समर्पिता होना सिखाया है
तुम्हारे गहनतम रहस्यों को
तुम्हारी मधुरिमा और उपदेशों को
जानकर भी
कौन जान सका है
ओ, मेरी प्रकृति सहचरी ।

युगान्तर

(1)

सृष्टि का आरम्भ !
प्रलयकारी वर्षा और तूफान !!
काले भुजंग सा फन फैलाये
अपार तम !!!
बिजली के तेवर बदलकर गरजता
क्रुद्ध-अम्बर !
इन सबके बीच
भीत-चिन्तित
आदिपुरुष-मनु !
आकुल अन्तर और
ध्रुवान्तों में दोलायमान
व्यक्तित्व लिये
प्राकृतिक उपादानों के बीच
किरण-पुरुष बनकर
सृष्टि के पुरोधा बने मनु !
कालचक्र के सन्धिस्थल पर तब
युगान्तर प्रस्तुत था
एक महान अन्तर्यात्रा को

क्रमशः

पार कर
विकास के चरमतम
शिखरों को छूकर
मनुपुत्र मानव ने
विज्ञान का वरदान पाया
अखिल संसृति के क्षितिज पर
उभरते वैज्ञानिक अन्वेषणों,
विलास, कला, कुतूहल और
सृजन के अद्‌भुत नर्तन ने
मानव-प्रज्ञा को
उत्प्रेरित किया
और मानव
प्रज्ञावादी बन
विज्ञान-पुरुष बन गया।

(2)

बुद्धि का विस्फोट
बुद्धि की पीड़ाएँ
ज्ञानाधारित खुला विश्व
प्रगतिमान सौरयुग
आध्यात्मिकता का प्रकम्पन
अशान्ति का मरुस्थल
विध्वंस के खण्डहर
वैज्ञानिक स्पर्धाओं की अंधगुहा से
अणु अस्त्रों की प्रयोगधर्मिता का प्रारम्भ
युद्धों की विभीषिका
और व्यवस्थाओं के
क्रम में परिवर्तन !
इन सब का एक भीषण परिणाम
अशान्ति..................!
विद्रोह, वैचारिक क्रान्ति
आतंक, षड्यन्त्र
अपहरण और शोषण का सूत्रपात

क्रमशः

अहम्मन्यता की नीति का जन्म
इन सबके बीच
संक्रमण की पीड़ा झेलते हुये
दो शताब्दियों के
सन्धि स्थल पर खड़े हुये
भीत, चिन्तित
मनुपुत्र—मानव !
आज कम्पित करों से
भविष्य विज्ञान की संभावनाओं के
द्वार पर
दस्तक दे रहे हैं

(3)

जीवन—विज्ञान की गहराइयों से
मानवीय मूल्यों के धरातल पर
वैज्ञानिक विकास का समन्वय होगा
प्रबल जिजीविषापूर्ण
इन बीजांकुरों में ही
भावी विकास—वृक्ष के
दर्शन होंगे—
यह संदेश देता हुआ
एक बार पुनः
युगान्तर प्रस्तुत है,
स्वागत करो
युगान्तर प्रस्तुत है।

तट–बन्ध

यौवन के उन्माद में
इठलाती
उमंगों में भरकर
खिलखिलाती लहर
तट से आ टकराई
तट के कठोर स्पर्श से
क्षुब्ध हो
लहर बोली
"किसी की कोमलता की भी
फिक्र नहीं तुम्हें,
अपने तटबन्धों की
सीमा में बाँध
मेरा पथ रोक
मुझे पीछे धकेलने वाले तट !
मैं तुमसे घृणा करती हूँ।"
"मानता हूँ लहर
मुझसे टकराकर
तुम्हारा अस्तित्व
छिन्न-भिन्न हो
बिखर जाता है

क्रमशः

पर उस टूटन से ही तो
नवोन्मेष होता है
मैं तुम्हारे लिए
आवश्यक ही नही
अनिवार्य भी हूँ लहर !
यह तट-बन्धन
तुम्हारा कारागार नही है
तुम्हारे कल्पना विलास
सपनों और उमगों
का क्रीडास्थल है।"
लहर स्तब्ध थी
तट के इस तर्कपूर्ण
त्यागमय स्नेह को देखकर
चकित, विस्फारित लहर
जान गई थी यह जीवन-सत्य
कि/कितना सुख है
अपने स्नेह-पात्र के लिए
स्वय को मिटा देने मे
और यह, कि-
तटबन्धों की मर्यादा को
तोड़कर जाने वाली लहरें
न तो कोई एक
नाम पा सकती हैं
और न ही सम्मान !

तुम्हारा नाम

एक पाती प्रीति की
भेजी है तुम्हारे नाम !
पत्थरों पहाडों ने
पुकारा है तुम्हारा नाम !
फूलों और पत्तियों मे
महका है तुम्हारा नाम !
तितलियों की बाहों मे
लिपट सोया है तुम्हारा नाम !
कलियों के घूँघट से
झाँका है तुम्हारा नाम !
पल्लव की मादकता से
छलका है तुम्हारा नाम !
मन उपवन में गाता,
झूमता तुम्हारा नाम !
चन्दा की चांदनी में
नहाया है तुम्हारा नाम !
रजनी की अलको मे
गुँथा है तुम्हारा नाम !
अमराई मे महका
अमवा सा तुम्हारा नाम !

क्रमशः

अनछुई किरनों की कोर में
टँका है तुम्हारा नाम !
हवाओं के माथे पर
चन्दन सा तुम्हारा नाम !
अँधियारी रातों मे
जुगनू सा चमकता
पलाश सा दहकता
हृदय के प्रदेश में
लिखा है तुम्हारा नाम !

वर्तमान की पीड़ा

'तुम, मुझ पर
मेरे व्यक्तित्व पर
क्यों छाये रहते हो ?'
उसने अपने अतीत से कहा,
"निठुर !
स्मृतियों का ढेर लिए
रोज़ मेरी आँखों के समक्ष
आ खड़े होते हो
और मैं,
असहाय,
बेबस, लुटा-लुटा सा
देखता रह जाता हूँ

— — — — —

मधुर और कटु स्मृतियों की
झोली भर कर लाने वाले
मेरे निठुर प्रियतम 'अतीत'
मैं तुम्हारा 'वर्तमान' हूँ ।"

अतीत जीवा

वर्षों से सोया ज्वालामुखी
भटकी साँसें
प्रश्नो का जंगल
ओ, मेरे अतीत,
मेरे इतिहास !

तुम क्यो मेरी ऊँगली पकडकर
पीडा के झरोखो से
वर्तमान की कल्पनाओ को
मरु-मरीचिका जैसे स्वप्नो को
दिखा-दिखाकर
रुलाते हो, हँसाते हो
और फिर
दर्द की लहर मे डुबो देते हो ।
ओ, मेरे बीते हुए 'कल' !
तुम इतने दर्दीले 'आज' बनकर आओगे
नही सोचा था ।

आत्मदंभ के खण्डहर

एक दिन ताजमहल के
संगमरमरी प्रस्तरखण्ड
मुझसे कह उठे
आओ, बैठो तनिक
हमारी विवशताओं की पीड़ा सुनो
ये ढेर-ढेर सैलानियों का झुण्ड
रोज़, जो हमें देखने आता है
गाइड दोहराते हैं
रोज, दिन में अनेक बार
वही रटी-रटाई
शाहजहाँ और मुमताज की प्रेमकथा
और कह देते हैं
बड़े निरपेक्ष-भाव से
वह-कथा भी
कि,
ताजमहल बनाने वाले महान शिल्पियों के
हाथ काट दिये गये थे
ताकि,
प्रेम का ऐसा अद्‌भुत-स्मारक
दूसरा न बन सके

क्रमशः

आश्चर्य और करुणा के भाव से
भर उठते हैं
विदेशी–सैलानी,
और बढ़ जाते हैं आगे
हम सोचते हैं
कैसा बेदर्द इतिहास है हमारा
निष्ठुर, क्रूर, रक्त में भीगा हुआ
ओ, शहंशाह !
तुम्हारे प्रेम की यह कलाकृति
अद्वितीय रहे
यह तुम्हारा आत्मदंभ था, प्रेम नहीं
हाथ कटते समय की पीड़ा
तुमने नहीं भोगी थी शाहजहाँ !
उन हाथों से गिरता हुआ रक्त .. ..
तुमने ताजमहल को
रक्तिम बना दिया है शाहजहाँ !'
यह कहते हुए
मौन हो, वह प्रस्तरखण्ड
एक अव्यक्त पीड़ा में
डूब गये
मुझे लगा उन महान शिल्पकारों के
कटे हाथ
पूरे ताजमहल की सलीब पर
ईसा की तरह लटके हुए हैं
उनसे बहता रक्त
पार्श्व से उठती चीखें
संसार की सौन्दर्य–पिपासु नजरों को
ताजमहल का यह रूप
क्यों नहीं दीखता
बचपन में माँ से सुना था
कि

क्रमशः

शरद पूर्णिमा की रात को
ताजमहल का गुम्बद
आंसुओं से भीग जाता है
मध्यरात्रि को
मुमताज की आत्मा रोती है
दर्दों के देश मे शान्ति के लिए भटकती
मुमताज, टीसों का अम्बार लिए
कराह उठती है
'उफ ! मेरे उज्जवल प्रेम की परिणति
इतनी अमानवीय ?'
उसकी सिसकियाँ
रात के सन्नाटे मे गूँज उठती हैं
और/विश्व के महान आश्चर्य में जड़े
अपनी नियति का दण्ड भोगते
मुमताजमहल के वो प्रस्तर खण्ड
पश्चाताप के इन आंसुओं में नहाकर
अपने अस्तित्व की
सार्थकता खोजते हैं ।

पतंग

पतंगे ही पतंगें
उड रही थी आकाश में
तभी/एक पतंग आगे बढी
कॉचल मॉझे वाली
उसने अपने समीप की
दूसरी पतंगों के इर्द-गिर्द
मँडराना प्रारम्भ कर दिया
इधर उधर लहरा कर
अद्भुत भाव भगिमाएँ दिखाकर
कभी गले मिलने का अभिनय
कभी दूर जाने का क्रम
और फिर
अनायास समीप आ
एक पतंग का
मूलोच्छेद कर डाला
उस लहराती पतनोन्मुखी पतंग को
विजय गर्व से भरकर
देखती यह पतग
अब दुगुने आत्मविश्वास से
दूसरी पतंगों को काटने चल दी
थोडी देर बाद—

क्रमशः

आकाश खाली था
अकेली एक पतंग थी
कुछ समझदार पतगें
उससे दूर....दूर....बहुत-दूर उड़ रही थीं
क्योंकि,
उन्हें आकाश में रहना था, उड़ना था
इस काँचल माँझेवाली पतंग का
सामना करने का साहस
उनमें न था
वे/अपनी नियति को
पहचान गई थी
इसीलिए वो समझौतावादी हो गई थीं
और वह....
काँचल माँझे वाली पतंग
अब अकेली
अपने विस्तृत साम्राज्य में
विचरण कर
अपने मन-पसन्द दाँव पेचों का
प्रदर्शन करती हुई
आत्मदंभ से भर उठी ।

साँप और सपने

मेरे सपने साँप है
चिकने, सर्पीले, दुर्दान्त
आकर्षण-पाश मे बाँधने वाले
मेरे सपने

साँप बन गये हैं
जो खुद मुझे ही
डसते जा रहे हैं
और मैं,

अपने स्वप्न-सर्पों की
आँखो के सम्मोहन म
बँधकर रह गई हूँ
अब,

मुझे नही मालुम
कि,
मेरी आँखो में
स्वप्नों का सम्मोहन है
या साँपों का
इसीलिये/ऐसी आँखो से

क्रमशः

जब दुनिया को देखती हूँ
तो/ढेरों सपने सहराते हैं
सांप की तरह,
बढ़ता ही जा रहा है
अपने कैंचुल बदलकर
मेरे सपनों का वंशवृक्ष ।

शब्दांकुर

मेरे मन की मिट्टी पर
बरसों बरसते रहे हैं आँसू
तभी तो
उर्वर मन-भूमि में
उग आए हैं—
ढेरों 'शब्दांकुर' !
और/अपनी स्वप्निल,
मादक आँखों से
चकित हो देख रहे हैं
इस सृष्टि का
असीम कार्य व्यापार
धीरे-धीरे
वे अपनी नन्ही,
सुकोमल बाँहें फैलाए
मुझे तुतलाहट में
पुकार उठते हैं
और मैं,
विभोर तन्मयता में डूबी
किसी अदृश्य शक्ति से
संचालित

क्रमशः

उनके मूक क्रीडा–व्यापार में
खो जाती हूँ ।
और/इस धरती पर
जड़ चेतन के बीच की दूरी
तय करके
मेरा मन
शब्दांकुरों की ऊँगली थामे
एक अतीन्द्रीय भाव लोक में पहुँच
विचक्षण हो उठता है ।

सार्थकता

इन्द्रधनुष की ऊँगली थामे
कल्पना की नवोढ़ा के हाथों मे
पवित्रता के प्रतीक
श्वेत अश्व की वल्गा
थमा दी थी तुमने
तबसे
निश्च्छल, सतरंगा.......कल्पना-विलास-वैभव !
भावो का विम्राट उच्छलन ! !
और
मृगछौना सा मेरा मन ! ! !
कुलाचें भरता दौड़ा जा रहा था
वन-वन
उपवन-उपवन
पर अचानक....
काल के क्षिप्र प्रवाह में
ऐसी तेज हवाएँ चलीं
कि उमंगों के मेघ
बिन बरसे ही चले गये
कहीं दूर देश
इस अन्धड़ में

क्रमशः

श्वेत अश्व का आरोहण
और कल्पनाओं का तृष्णामृग
सब धूल-धूसरित हो गये
चकित, विस्फारित नेत्रों से तकती
मेरी आत्मा की उस नवोढा को
तुमने,
यथार्थ के रंगमंच पर/ला खड़ा कर दिया
इतना ही नही
उसे दर्दीली-धुन पर
नाँचने को भी विवश किया
और फिर
अनुभव के आघातो से
खुलती बिखरती
मेरे भावो की परतों का
सयोजन भी तो तुम्ही ने किया था।
मेरे विश्वासों का ध्रुवतारा
मेरी आस्थाओं का सूरज
डगमगाने लगा है
फिर भी—
आत्मा के विक्रय की अनुभूति
मुझे कभी नही हुई
कामना-विहगों को सुलाकर भी
यथार्थ के शाश्वत मूल्यो को
स्वीकार कर भी
मैं वैरागिन नही हुई
मेरी चेतना, मेरी धड़कन
मेरा स्पन्दन, मेरा चिन्तन
आज भी,
कभी-कभी
सतरंगा परिधान पहनकर

उसी श्वेत-अश्व की
वल्गाओं को थाम लेता है
और तब मैं
घृणित यथार्थ की भूमि से
बहुत ऊपर उठकर
विस्तृत आसमान नभ की
ऊँचाइयों को छूने का प्रयास
जब-जब भी करती हूँ
तब तब
उन्ही क्षणों मे
मेरा अस्तित्व
सार्थक हो उठता है

महारास

मानस वृन्दावन की अभिसारिणी राधा
यमुना-तट
तारों की स्वप्निल छाया
रसिक शिरोमणि का आमन्त्रण
साकार ब्रह्म का आमन्त्रण
आत्मा की गोपियों का आगमन
और,
आदिशक्ति राधा के साथ
माया शक्तियों का प्रकटीकरण
अनेक रूपधारी राधा-कृष्ण !
हर ओर कृष्ण ही कृष्ण !
राधा ही राधा-
रूप का सरोवर सज गया हो जैसे
कितना विराट !
कितना भव्य !!
श्रृङ्गार भावनाओं से अनुप्राणित
अद्‌भुत, अनिर्वचनीय नृत्य
रास-नृत्य
अल्हड़ पवन की अठखेलियाँ
उमंग, उल्लास और मधुरिमा का
चरन-आवेग !

क्रमशः

पेड़ पौधे लता पल्लव
समूची सृष्टि
नृत्य की लय पर थिरक उठी
पूर्ण-ब्रह्म के चिर विरह की
सिसकती रातें
आज झूम उठी

पूनम का छलछल करता आसव
महाशक्ति सृजित राधाओं के
मन-पनघट की रूप-गागरी
परितृप्त हो गई
ओह !
कैसी विभोर सर्जना है ?........
भावानुप्रवेश का असीम सौन्दर्य !
रोम-रोम जैसे बाँसुरी बजा उठा
बेसुध तन्मयता की असीमता
कृष्ण के विराट रूप में
अनेक रूप/राधा कृष्ण रूपी आत्माओं का
विलयीकरण,
अनन्त तन्द्रावस्था !
आनन्द रस का
अमन्न-सागर !!
परमात्मा की नृत्य लीला—
महारास !!!

यायावर–शब्द

मेरे–शब्द
रोज/ग्रसीम दूरी लांघकर
यात्रा करते हैं
तुम्हें तो मालुम है
तुम्हारे पास ही तो ग्राते है
ग्रौर तुम !
हृदय के द्वार पर बैठी
रोज/प्रतीक्षारत
उन शब्दों को न जाने
किन–किन रूपों में पढती होगी
पर/इतना मैं जानती हूं
कि, ग्रन्त में
मेरे सब शब्दो के ग्रर्थ
तुम्हारे लिए
सिर्फ एक शब्द मे
सिमट ग्राते हैं
ये बात
मेरे यायावर शब्द लौटकर
मुझे रोज बताते हैं ।

यथार्थधर्मी

जीवन की परिभाषा बदल दी तुमने
मेरे अस्तित्व बोधक चिह्न पर
प्रश्नचिह्न लगा दिया तुमने
ओ, मेरे यथार्थधर्मी अस्तित्व !

तुम्हे क्या मिला ?
मेरी चाँदनी धुली
रसगन्ध आप्लावित
कल्पनाओं को तोडकर
और मेरे सपनों को
मात्र—
छलावा सिद्ध करके ।

मेरी नियति

जीवन के केनवास पर
एक चित्र बनाया था मैंने—
तन-मन की पूरी निष्ठा से।

मेरे चित्रकार ने
विमोर-सर्जना के तन्मय क्षणों मे
अपनी कल्पना को
अन्तिम निखार
देने की कामना से
ज्यों ही—

तनिक दूर रखकर
चरम-स्थल तक पहुँचे
अपने उस चित्र को देखा
तभी—ssssss

एक आँधी आई
मेरी कल्पना के अन्तिम शिखर को
मेरे हाथो से छीन कर ले गई
और मैं !

शून्य में बाँहें फैलाए
सूनी फैली आँखों से
देखती रह गई।

अपने कल्पना चित्र को
अपने से दूर—दूर और
बहुत दूर होते हुए।

आंधी भी तो प्रकृति की
नियति है।

और मेरी नियति !
अपने कल्पना चित्र को
किसी और की कल्पना मान
आंधी मे उड जाने देना ही तो थी।

युद्ध, क्यों हो जाता अनिवार्य

कभी सुना था
कि/मानव मस्तिष्क में ही
होते हैं

युद्ध के बीज
तभी तो, मानव ने
वैज्ञानिक प्रगति के नाम पर
बना डाले—शस्त्र !

शस्त्र और शान्ति का
शाश्वत रहा है वैर
युद्ध, युद्ध, युद्ध–
पुकारते हैं शस्त्र–
बस, केवल 'युद्ध !'

ओ, नेपोलियन !
तुमने तो कहा था,
"युद्ध असभ्य लोगों का
व्यापार है एक बर्बर।"

फिर तुम्हारी कथनी और करनी में
आ गया कैसे
इतना बड़ा अन्तर ?

"युद्ध छिड़ा और
नरक खुला"

कहते हुए, इटली ने भी
युद्ध की वर्जना की थी

धरती की शान्ति के लिए
महाशक्तियों ने गुँजाया था
एक गगनभेदी नारा—

"दे देंगे धरती का गोला
बच्चों को।"

हिरोशिमा और नागासाकी की
करुण—कथा का पुनरावर्तन न हो
इसीलिए—

'द डे आफ्टर' ने
दी है चेतावनी
और दर्शाया है

परमाणु विस्फोटों से
सृष्टि का अकल्पनीय
दुर्धर्ष, भीषणतम
महाऽऽ विनाश !

फिर भी.......
जलते रोम की पीड़ा से बेखबर
आज भी

न जाने कितने नीरो
बजाते हैं बाँसुरी
फिर भी.......

कहीं, कुछ क्यों होता नहीं
क्यों छिड़ते हैं शीतयुद्ध—
और महायुद्ध ?....

क्रमशः

क्यों रावण और दुर्योधन का अहंकार
पाता जा रहा है विस्तार
ये मानव-मन की
कौन सी दमित आकांक्षा है
युग जितना सक्रिय होता है
उतना ही निष्क्रिय भी
क्यों हो जाता है हर बार ?
युद्ध, क्यों हो जाता अनिवार्य ??

जीवन का व्याकरण

मेरे जीवन का व्याकरण
जटिल बन गया है
क्यों कि
मैंने
विरामचिह्नों में
एक नया चिह्न खोजा है।

मेरे अस्तित्व की घोषणा करने वाला
अस्तित्वबोधक-चिह्न

पर लोगों ने कहा
ये कौन सा नयापन है ?
हम थे, हम हैं
और रहेंगे भी
तुम्हारे द्वारा
अस्तित्वबोधक चिह्न
बना देने से
कोई कमीबेशी तो नहीं आयेगी।

आत्म-मंथन

भूतकाल की गौरव गाथाओ
और
युद्ध-देश प्रेम की आड़ मे
इस सच्चाई से
मुँह कैसे मोड़ लूँ
मेरे देश के ज्वालामुखी से
समस्याओं का गर्म लावा
बहता ही जा रहा है ।

आओ,
बैठो मिलकर
करें आत्मावलोकन
आत्म-मंथन
मूल्यांकन
कि,
स्वर्णयुग से
कम्प्यूटर-युग तक
हम
कितने बने, बिगड़े हैं
टूटे, बिखरे और फिर
सिमट गये हैं ।

तुम्हारा-सख्य

तुमसे, तुम्हारी तरल स्निग्ध
रस आप्लावित आत्मीयता से
विमोर-मन !

सारी दुनिया के दुःखों को भूलकर
नई प्रेरणा से भर उठता है

उत्साह, उमग, कल्पना-तरग के
तुरग पर आरोहण कर
तुम्हारे सख्य की वल्गाओं से खिंचता
मेरा मन,
अदम्य साहस से भर उठता है

तुमसे मात्र मिलकर
दो क्षण बतिया कर
मन के पहाड जैसे बोझ भी
पानी बन पिघल जाते है

वेदो की ऋचाओं सा पावन
तुम्हारा यह सख्य
मेरा प्रेरणा स्रोत बना रहे

इसके आगे
कुछ पाने की चाह नही ।

पुलकित-स्वप्न

नयन निलय को मूँदकर
लाल सुर्ख गुलमोहर के नीचे बैठे
कलाकार की आत्मा मे
वज रहा था
एक मधु-संगीत !

अपनी स्वप्निल आँखों को
तनिक खोल वह
आत्म निवेदन ही तो कर बैठा था
"मैं तुम्हारे इस सौन्दर्य का
उपासक हूँ रूपसि !

तुम्हारे इस रेशमी सौन्दर्य ने
मेरे गीतों को
"उपासना-स्थल" प्रदान किया है-

मेरी प्रेरक-शक्ति !

तुम्हारी आराधना के क्षणों में तो
मैं "मधुमती भूमिका" में पहुँच
चरम आनन्दानुभूति के सागर में
हो जाता हूँ तन्मय !"

अनायास ही,
गुलमोहर से

क्रमशः

बरस पड़े ढेरों फूल
डूबी हुई उन्मन निद्रा में
अधमुंदी उन आंखों में कलाकार की
जाग उठा एक
पुलकित स्वप्न !



अनन्त नीलिमा में तैरता
सतरगा इन्द्रधनुष
लाल गुलाब की आंखों से
झांकता मादक मधु—
सबसे आंख बचाकर
तितली को संकेत कर बैठा
इठलाती, बलखाती तितली
पंखों में प्रथम प्रणय का उन्माद छुपाए
उड़ चली
जूही की कली चटख गई
निहाल हो गया उपवन



एक अल्हड़ मुस्कान तैर गई
कलाकार के सौम्य मुख मण्डल पर
धीमे........बहुत धीमे
उसने/तन्द्रिल पलकों को
खोलकर देखा
लाल सुर्ख गुलमोहर के फूलों की बिछी चादर
चादर के पार
अनन्त अथाह
भाव–रश्मियों
और,
कल्पनाओं का संसार
हजार हजार प्राणों की आकुलता

क्रमशः

प्राण वीणा पर
संगीत बिखेर उठी,
"मैं तुम्हारे सौन्दर्य का
उपासक हूँ रूपसि !

मेरे हृदय में कल्पनाओं,
स्वप्नों का ग्राल-जाल बुनने वाली
मेरे उपवासी जीव को
आत्मानन्द के सुनहरे आलोक से
भरने वाली,
मेरी आराध्य !

अनन्त रूपवान !!
मेरे प्राणों में सौन्दर्य की
चिरन्तन प्यास जगाने वाली,
मेरी प्रकृति सहचरी !
तुम्हीं तो मेरी सर्वस्व हो।"

कैसे हैं ये लोग

ऐसे भी हैं कुछ लोग
हमें सामने देखकर
जिनकी वाणी में
मिश्री की मिठास घुल जाती है
हमारी तारीफों के पुल बांध दिये जाते हैं
और,
हमारे मुंह मोड़ते ही
एक व्यंग्यपूर्ण, समझदार
हँसी हँसने की कोशिश करते हुए
उछाल देते हैं कुछ वाक्य
मैं समझ जाती हूँ
जानकर अन्जान बन जाती हूँ
वे फिर मुझे मिलते है
खीसें निपोर देते हैं वे
एक बार फिर जुट जाते हैं
उसी प्रशसा वर्णन मे
मैं समझ नही पाती
आश्चर्य में डूब जाती हूँ
कैसे है ये लोग ?

एकान्त के साथी

तुम चले गये हो
और मेरे अन्दर एक अंजानी रिक्तता
गहरे-गहरे तक भर गई है
तुम सोचते हो,
तुम्हारा जाना, तुमसे विलग होना
मेरी अनुभूतिहीनता की
एक स्वीकृति है
पर कभी यहाँ की
चलती हुई हवाओं से पूछो
यहाँ के उदास मौन
वातावरण में देखो
ये मेरे एकान्त के साथी
खोजते हैं तो सिर्फ
तुम्हें,
तुम्हारे अस्तित्वों को
तुम्हारे विहँसते उत्साह को
पुनः आभासित करना चाहते हैं
उन जीवन्त क्षणों को
जिन्हें हमने तुमने जीकर
विचक्षण कर दिया था ।

सूना आकाश

तुम्हारे जाने के बाद
मन कितना सूना सूना लगता है
खुले विस्तृत आकाश सा
मेरे मन का फैलाव
जिसमे प्रतिपल
कल्पनाओं के सितारे
झिलमिलातें रहते थे
पर आज,
जब तुम चले गये हो
तो लगता है, जैसे—
किसी बडे मेघ खण्ड ने
चांद को
मेरे अस्तित्व के ध्रुवतारे को
ढंक लिया है
और अब
मेरे जीवन–दीप
मेरे नयनों में
आंसुओं की झील कंपकंपाने लगी है
दूर....दूर....तक
अनन्त कुहेलिका
नीहार का अवगुण्ठन

क्रमशः

इन सबके पार
तुम, जिसे मैं देखना चाहती हूँ
तुम, जिसके अस्तित्व का आभास
मैं, मेरा मन
पाना चाहता है
कल्पनाओं की डोर थामें
मेरे सपनों की पतंग
मन के आकाश में
अथाह वेदना समेटे
फड़फड़ा रही है
ये घुटन, संत्रास
अन्य उड़ती हुई पतंगों के साथ
संघर्ष करने का है
या फिर
कौन जाने
इतने बड़े आकाश में
अकेलेपन की ऊब है
किंवा,
एकान्त की
छटपटाती अनुभूति है ।

दहकते पलाशों के बीच

कुहू, कुहू, कुहू
पुंस्कोकिल पुकार उठा
दहकते पलाशों के बीच
रेत के मन्धड मे
चक्रवात से घूमते
सूखे खड़खडाते पत्ते
दूर....दूर तक तपती दोपहरी
इन सबके बीच
रजनीगन्धा सी महकती
याद तुम्हारी
धूप की तपिश
हवाओं की गर्मी
महकी साँसो की सरगम पर
तुम्हारी स्मृति के गीत सुनाती
पुरवा बन जाती है
चीड़ की ऊचाइयाँ
घने नीम की झूमती घनाइयाँ
कोकिल !
तुमने तो अमराई मे
एक नई तान छेड़ दी ।

अहम् की रस्सियाँ

अपने-अपने अहम् की
तनी हुई रस्सियों पर
चलते हुए हम
अब
एक दूसरे को
एक खिंची हुई नज़र का
उपहार ही दे पाते हैं
सम्प्रेषण के सभी उपादान
मौन हो गये है
स्नेह-रस सूख चुका है
शायद
ये हम दोनों के
टकराते हुए अहम् की
अभिव्यक्ति है
या/एक दूसरे को दिये गए
दुःखों का
अचेतन-मन द्वारा
लिया गया बदला है ।

सर्पदंश

जीवनभर के विश्वासों की पूँजी लुटाकर
मैंने क्या पाया ?....
सन्देह-सर्प के—
शंकित-दंश !
कोई कालवेलिया है
जो इस सर्पदंश का
उपचार कर सके
मेरी नीलवर्णी देह के
ज़हर को पीकर
उसे फिर से जिला सके ।

प्रेत–मुक्ति

तुमने मेरे विश्वासों के नगर को
खण्डहर बना दिया है।
जीवन की जगमग–उजास को पीकर
एक काला सूरज
मेरी हथेली मे थमा दिया है।
खण्डित नगर के ध्वंसावशेषों के
अँधेरे, बीहड़ रास्तों में भटकती
मेरी आनन्दमयी आत्मा का प्रेत
अपनी मुक्ति के लिए
छटपटा रहा है।
एक श्रद्धामर—'श्राद्ध'
क्या उसे मुक्त कर सकेगा ?

बसन्त के दो रंग

जीवन के आँगन में
बसन्त आज आ गया
पंचम तान कोयल की
लहराई मधुवन में
भँवरे शराबी बने
लड़खड़ाते गा रहे
कमलों ने हृदय खोल
रख दिया चरणों में
मुट्ठी भर पराग ले
उड़ा दिया बसन्त ने
सतरंगी तितलियों के
सुकोमल पखों ने
भर दी मधुरता
यौवन तरंग मे
नाचते थे, गाते थे
झूमते थे आज सभी
जीवन में आयेगी शाम
ये किसको पता था
टूट गया सपना
लुट गया वैभव

क्रमशः

वसन्त था छली जो
छलकर चला गया
रोती थीं कलियाँ
सिसकती थी वसुन्धरा
अब,
था केवल पतझर
वसन्त तो चला गया

तुम्हीं हो

हमने सदैव
एक-दूसरे को
अन्यायी घोषित करने की
जो भूल की है
वो मेरी नजर मे
सिर्फ मोहान्धता ही थी'
पर वह रस-भीनी मोहान्धता
कितनी पावन
कितनी निश्छल थी
सब कुछ लुटा देने को तत्पर थी
अब क्या शेष है तुममे ?
नहीं जानती
किन्तु, मेरी आत्मा का रसाभिषेक
मेरे सत्य का चरम
आज भी
तुम्ही हो।

प्राप्तव्य

मिथ्या खोखले सम्बन्धो की पृष्ठभूमि पर
बने हुए
रेत के ताजमहल
इन्हें देखकर
मुझे न जाने क्यों ?
मानव मूल्यो का
टूटा हुआ इन्द्रधनुष याद आता है।
लगता है
न जाने कितनी आँखों के
समतावादी सुनहरे सपने
पराजय और विवशता की कब्र पर
दम तोड़ रहे हैं
इसीलिए
घृणा, द्वेष और अहं की दीवारें
मानव को मानव से
मिलने नही दे रहीं
कौन है जो मिटाए
इस दूरी को....?
व्यक्ति के तन-मन
दोनों ही थक चुके हैं
मंज़िल दूर है

क्रमशः

यहाँ–वहाँ
सब ओर
दिशाहीनता, स्वार्थप्रेरित दिशाबोध
मूल्यों के वियावान जंगल में
भटकता हुआ मेरा मन,
आँखों मे निराशा का काजल आँजकर भ
आदर्शों की सीढ़ियाँ चढ़ते–चढ़ते
कभी नही थका है,
और अब
मुड़ चुकी है दिशा—
उस ओर—
हर तृषित आत्मा को प्यार देना,
हर आँख के आँसुओ मे
हँसी की झिलमिलाहट भर देना
बस, यही है—
मेरा चरम–'प्राप्तव्य' ।

अनुभूति

सैंकड़ों सूइयों की चुभन
सही है मैंने
व्यथाएँ अनकही भी
सही हैं मैंने

तुम ये क्या कहते हो
बेईमान हूँ मैं ? ।
निष्ठा नहीं है मुझमें ?
ओ, प्रभुता के दंभ !

किसी की निष्ठा और ईमानदारी के
दुर्भेद्य किले मे
सूराख करने का
परिणाम जानते हो

हमने अपने दिन उजाले
और निशि के चिन्तन
जीवन के मधुरिम स्वप्न
और अरुणिम-क्षण

सब तुझे समर्पित कर दिये थे
ओ, मेरी पावन कर्म-स्थली !

मेरी एकनिष्ठा को

क्रमश

समाधिस्थ तपस्या जैसे कर्मों को
तुमने 'निष्ठाहीन' की संज्ञा दे
ध्यान भग्न योगी से
मेरे स्वाभिमानी स्वप्नों को
जगा दिया है

उनकी तड़प
टूटे शीशों की किरचों सी
मेरे समूचे व्यक्तित्व को
लहू लुहान कर गई है।
मैंने देखा—

ईमानदारी के उस रक्तिम पुरस्कार को—
जिसे मेरे हाथो में थमा दिया गया था
और मुस्करा रही थी प्रभुता—
अपनी क्रूर विजय पर।
तभी/आँसुओं में डूबी मेरी आँखें
ऊपर उठती हैं

तुम्हारे द्वारा दी गई
उस सज़ा के लिए
ढेरो घृणा उगल देती हैं

उस पवित्र—घृणा के
यज्ञ—धूम्र में
तुम्हारी कुटिलताओं के
दाँवपेच
महत्वाकांक्षा का दर्प
बेईमानी
प्रभुता का मिथ्या दंभ
सब कुछ विलुप्त हो गया
और विहँसता, खिलखिलाता

क्रमशः

मेरा वर्तमान/मेरी ऊँगली थाम
मुझे एक ऐसे अतीन्द्रीय लोक में
ले जा रहा है

जहाँ,
ईमानदारी का चाँद हँसता है
दिशाएं परार्थ चन्दन की गन्ध से
गन्धित हैं।

प्रश्न प्रधान है

व्यक्ति को परखने का निकष
बताया था मनीषियों ने
प्रश्न—
और हम कि—
प्रश्नधर्मी अस्तित्वों की उपेक्षा कर
उनके प्रति
तटस्थ निरपेक्षता का
जामा ओढ़ लेते है
केवल उत्तरों की प्रतीक्षा में
अनुत्तरित प्रश्नों के बोझ
ढोते हैं
प्रश्न तो तीर हैं
मस्तिष्क के तन्तुओं को हिला देने वाले
उद्दीपन है
शिराओं की उत्तेजना
और बुद्धि की प्रक्रिया हैं प्रश्न
व्यक्ति के अस्तित्व का मूल्यांकन
उत्तरों के आधार पर
फिर क्यों करते हैं हम ?
प्रश्न सब नही करते
नही कर सकते

—क्रमशः

आत्मचेता, समाज चिन्तक
या फिर प्रबोध बालक ही
प्रश्न करते हैं
कर सकते है
बाकी सब तो
यथास्थितिवादी होते हैं
चुप्पू सभ्यता के
मुरीद होते हैं
ओ, मेरी नई पीढ़ी !
तुम/मौन भंग करो
मस्तिष्क के जंग लगे
कपाटों को खोलकर
मन के सन्नाटों को
तोड़कर
उत्तरों का सम्मोहन
खत्म करो
उत्तर प्रधान नहीं है
कि/प्रश्न जितने सटीक होंगे
कसावट वाले और
तर्कपूर्ण होंगे
कथ्य और शिल्प की
गहराई वाले होंगे
उतने ही गहरे
उत्तरों में समाधान होंगे ।

रेत में वृन्दावन

बहारें तो आती हैं सिर्फ नसीब वालों के लिए
बदनसीब तो पतझरों में भी जी लेते हैं

ओ, तारों की झिलमिल
'ओ', फूलों की महक में
गुनगुनाने वालो !

हमें तो अमावस और काँटे भी हँसा देते हैं ।

जाड़े की धूप और सुरमई साँझ—
रुनझुन सी पायल बजायेंगी तुममें,
हम तो लू की बाँसुरी पर भी मोहित होते हैं ।

मुबा़रक़, तुम्हें ये मचलती लहरों का संगीत,
हम तो रेत में वृन्दावन समझ हँस लेते हैं ।

भूख

गरीबी में सिसकती
देश के माथे पर
विषमता का काल टीका लगाती
आर्थिक संकट सी
गहराती है भूख,

सोने की चमक और
सिक्को की खनक से
पगलाई सी
झूठे छलावों में
छली जाती है भूख,

बचपन के झूले में
झूलने को तरसती
सपनों के इन्द्रजाल में छटपटाती
यौवन सी भूख,

घोषणाओं वक्तव्यों और नीतियों के
चक्रव्यूह में फँसी
दुःखो के हिरण्याकश्यप से जन्मी
ये प्रहलाद सी भूख,

धर्म की मर्यादाओं को
तोड़ती, थकाती

क्रमशः

धर्म के लिफाफों में
छुपी बैठी है भूख,
जनसंख्या विस्फोट और
वेकारी से जन्मती
अमानवी शक्तियों से लडती
हारती, फिर समझौता करती
सद्‌गुणों को डसती
सर्पिणी सी भूख,
अपराधो की घाटी में
आक्रोश के कैक्टस
उगाती है भूख,
रेगिस्तान मे भटकती हिरनी सी
शान्तवन मे दावानल
जलाती है भूख,
भूगोल और खगोल मे
बवडर उठाती
मानवता सरिता के
किनारो को तोड़ती
सूरज के द्वारो पर दस्तक देती
अपराधों की काली कोठरियो की भूख,
शैतान की तरह कभी-कभी
बाइबिल पढती है
अखबार के मुखपृष्ठो पर
सुर्खियो मे छपी
समस्याओ के विसूवियस पर बैठी
हो गई है बागी
इस देश की भूख

अस्मिता

जीवन के सत्यों की तलाश में
अनबूझे प्रश्नों का ढेर लिए
ओ, राष्ट्र के भाग्य निर्माता !
तुम कितने बेबस हो उठे हो ?

कुंठा, पीड़ा और निराशा की गलियों में भटकते
अपने भविष्य के अँधेरे में
तुम क्या टटोल रहे हो

अन्तर्द्वन्द्व की छटपटाती अनुभूति
कुछ कर दिखाने का हौसला रखकर भी
कुछ न कर पाने की विकृति ने,
तुम्हें,
नीलामी के चौराहे पर
ला खड़ा किया है
और तुम !

बालक के जीवन उपवन के माली,
चाँदी के चन्द खनखनाते सिक्कों में
अपनी हँसी

अपना जीवन
अपना भविष्य

क्रमशः

दाँव पर लगा बैठे हो
मेरे देश के शिक्षक !

भूतकाल की सपनीली पगडंडियों से
निकल कर
वर्तमान की कठोर भाव-भूमि पर उतर
अब वह समय नही
जब,
एकलव्य
अप्रतिहत पक्षी सा छटपटाता
अपने अंगूठे का दान कर दे
क्यों कि/द्रोणाचार्य को
दण्ड देने के लिए उद्यत
अन्याय के चक्रव्यूह मे फँसा
विद्रोही अभिमन्यु—

इस श्यामला धरती के
नौनिहालो के रूप मे
अवतरित हो गया है ।

उसी के 'घेराव' और
'पथराव' की वर्षा मे
चिन्गारियो की जलन में

तुम्हारा ये अचल हिमालय सा
मन भी डोल उठेगा
किन्तु/पलायन कायरता है

तुम नवयुग का आह्वान करो
पुरातन रूढियो को तोड़ दो,

भ्रष्टाचार की कारा मे निकाल कर
देश को प्रबुद्ध नागरिक दो,
जनमन को चेतना दो,
शक्ति, स्फूर्ति, प्यार और ज्ञान दो

प्रश्नों की आँधी

अतीत के झीने अवगुण्ठन से झाँकती
सिसकती, विश्व-गुरु की गरिमा से मण्डित
मेरे देश की आत्मा
आज दर्द से कराहती है/छटपटाती है

और फिर पूछती है—
ये कैसा धर्म है?

जो तुम्हें
खून की नदियाँ बहाने को
मजबूर कर रहा है

तथागत,
नानक
ईसा और मोहम्मद
राम, कृष्ण
परमहंस और महावीर ने तो
यह नह नहीं कहा था
वे प्रकाश-पुञ्ज थे
आस्थाओं के दृढ़ स्तम्भ थे
मानवता उनसे जीवित थी
और आज तुमने
उनके जीवन दर्शन को

क्रमशः

परिभाषा ही बदल दी है
उनके द्वारा प्रतिपादित
धर्म को पगु बनाकर
हिंसा की बैसाखियाँ
पकड़ा दी हैं

और
इन बैसाखियों के सहारे
तुम अपने
अहवादी क्षिप्त मन की
अपने कायरतापूर्ण नपुंसक दर्प की अभिव्यक्ति
खुलकर कर रहे हो
इसीलिए
मेरे देश की धरती में
ढेरों प्रश्नचिह्न उग आए हैं………

मानवीय सवेदनाओं की होली जलाकर
उसकी राख को अपने माथे पर
चदन सा सजाकर
ये कौन अपरिचित हैं

जो अपने धर्म की
घोषणा कर रहे हैं ?………

क्या इस देश की मिट्टी में जन्मे हैं ?………

यहाँ की सौंधी-गन्ध
और हवाओं की खुशबुओं ने
इनके बचपन को नहीं दुलराया है ?

यौवन को महका कर
बुढ़ापे को नहीं सँवारा है

तब फिर
कृतघ्नता इनका शृङ्गार

क्रमशः

कैसे बन गई ?.........
रक्त की वैतरणी में
हिंसा का तांडव करते हुए
क्या ये
"जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपी गरीयसी" के
आप्त-वाक्य को
भूल गये है ?.........
"राष्ट्र देवो भव"
अब केवल
सजावट का सूक्ति वाक्य
बनकर रह गया है ?....
ओ, मेरे देश के दिग्भ्रमित यौवन !
क्रूर, अमानवीय
आतंकवाद के दलदल में धँसे
ओ, मेरे देश के अप्रतिम-ओज !
शक्ति के असीम-पुञ्ज !!
विदेशों मे बैठे
उन स्वयंभू शासकों
तिमिर पुत्रों,
देश की एकता के लूटेरो के
संकेतों पर
अपनी मा की
यूँ सरेआम नीलामी मत करो
संसार के चौराहे पर
आर्यावर्त के स्वर्णिम इतिहास की
"वसुधैव कुटुम्बकम्" की
मैत्री, करुणा और पंचशील के आदर्शो की
बोली मत लगाओ
भविष्य की मिट्टी में दबा
इतिहास का वो काल-पात्र

नीलकण्ठी शिव नहीं है
जो तुम्हारे कलङ्क का विष-पीकर भी
तुम्हें क्षमा कर देगा
तुम्हारे दुष्कृत्यों का फल
भावी पीढ़ी को भोगना होगा
और वह नन्हे पौधे
यह कभी नहीं भूलेंगे
कि/तुमने उनके लिए
पावन तपोवन जैसे निर्मल आकाशवाले
देश की
खुशबुओं से लबरेज़ हवाओं में
साम्प्रदायिकता का जहर घोल दिया था
आंख खोलते ही पहला-पाठ
उसे नफरत का पढ़ा दिया था
वह तुम्हारे लिए

अपने जन्मदाता के लिए
घृणा का धुंआ उगलेगा
पहला वार तुम्ही पर करेगा
तब तुम/महसूस करोगे
जन्मदात्री मा की पीड़ा को
जन्मभूमि की पीड़ा को
तुम्हारा पश्चाताप
तुम्हारा रुदन, तड़पन
और छटपटाहट
सब व्यर्थ हो जायेगी
फूलों की इस सुन्दर धरती पर
रक्त-डूबे कमल होंगे
पचशील का आहत पंछी
हिम-चट्टानों पर
सिर पटक-पटक कर रोयेगा

क्रमशः

तब तुम विवश, निरुपाय होगे
कुछ नहीं कर सकोगे
इसलिए,
ओ, तुम जो
साम्प्रदायिकता की आग में
जल रहे हो
ओ, अदूरदर्शी !

इस मृगजल की मरीचिका को पहचानो
आतंकवाद की पगडण्डियों से उतर
मानवता के राजमार्ग पर चलो,
भावी स्वप्न के द्रष्टा
इतिहास-पुरुष बनकर
एक बार फिर
विश्व-मंच पर
अपनी जनलक्ष्मी के पैरों में बँधे
घुँघरुओं की झंकार से
विश्व के हृदयों को
आन्दोलित कर दो
मिठास भरी मानवता का
संगीत गुँजा दो ।

आठ लघु कविताएँ

नये अर्थ

शब्दों की कीलों पर
टाँग दिये भावों के चित्र
गोया कि
जिन्दगी की दीवार को
सजाना जरूरी था
या कि
मैंने अपने होने को
दे दिये नये अर्थ !

—o—

तुम मिले

तुम मिले ऐसे
अचानक,
जैसे
घुँघरुओं की झनकार
मेघ-मल्हार
बजती जलतरंग
या विहँसती हो
सूर्य-किरन !

—o—

स्मृति

स्मृति !
तुम कितनी क्रूर, करुण
और निर्मम हो
तुमने मुझे
सैकड़ो बार रुलाया है ।
कठोर होते हुए भी
तुम मुझे प्रिय हो ।

—o—

प्रतिध्वनि

मन की ग्रमराइयों मे
स्मृतियो की कोयल
कुहुक रही है
लगा बसन्त ग्रा गया है
उसकी हर कुहकिन मे
तुम कहाँ ! ऽऽ तुम कहाँ ऽऽ
ध्वनित होती है
ग्रौर
प्रतिध्वनि बनकर
ग्रभी तक लौट ग्राती है !

—o—

मेरा प्यार

मेरा प्यार
गंगाजल नही
मेरा प्यार
यमुना जल है
क्योंकि उसमे
बिछोह की कालिमा तनी है ।

—o—

दर्द

दर्द का विस्तार ही तो
जिन्दगी की है कहानी
ओ, मेरे चिर सहचर !
कल्पना के पाँखी ! !

मुखोटे

पहले
मुखोंटे लगाये जाते थे
रामलीला के लिये
अब मुखोटे लगाकर
रावणलीला हो रही है ।

—o—

प्रतिध्वनि

मन की अमराइयो में
स्मृतियों की कोयल
कुहुक रही है
लगा वसन्त आ गया है
उसकी हर कुहकिन मे
तुम कहाँ ! ऽऽ तुम कहाँ ऽऽ
ध्वनित होती है
और
प्रतिध्वनि बनकर
मभी तक लौट आती है ।

—o—

मेरा प्यार

मेरा प्यार
गंगाजल नही
मेरा प्यार
युमुना जल है
क्योंकि उसमें
बिछोह की कालिमा तनी है ।

—o—

दर्द

दर्द का विस्तार ही तो
जिन्दगी की है कहानी
ओ, मेरे चिर सहचर !
कल्पना के पाँखी ! !

मुखोटे

पहले
मुखोटे लगाये जाते थे
रामलीला के लिये
अब मुखोटे लगाकर
रावणलीला हो रही है ।

—o—

छिद्रान्वेषण

छिद्रों के अन्वेषी युग में
पहले,
छद्म 'तटस्थता' ने
घूँघट लगा लिया
और फिर लाजवन्ती
वह स्वयं
'छिद्रान्वेषी' बन गई

—o—

भुवन मन मोहन

उस एक चराचर जगद्
विश्व के स्वामी का
मधुमय नर्तन !
दसों दिशाओं की तालो पर गतिमय
वह पद-निक्षेप
फिर विश्व–मंच मे
मोहक कम्पन,
भुवन मन मोहन !
भाव नृत्य नटनागर का वह
वह सम्मोहक नयन
नयन के वह कटाक्ष
वह उन्मन पुलकन,
वह आकर्षक भृकुटी भंगिमा
अधरों का थरथर स्पन्दन,
भुवन मन मोहन !
कटि बन्धन पर पीत ओढ़ना ।
करते जब वह कुछ भावन,
सुर, लय, ताल, समन्वित होकर
भाव लहरियों का वह नर्तन,
मेरे प्राणों की वीणा पर
झंकृत गीत तुम्हारा
मोहक गुंजन,
भुवन मन मोहन !

याचना

(1)

जब तक प्राणों की बाँसुरी है
इसके रोम-छिद्रों बसे
तुम्हारे ही गीत बजते रहें,
ओ, दयामय।

तुम इसके स्वरों मे
प्रकम्पन भरते रहना
आत्मा के पावन संगीत को
सुनते रहना।

(2)

मेरे अन्तस की जगमग देहरी के
प्रखर आलोक-पुञ्ज !

तुम यों ही
आलोक लुटाना
और निर्धन के
मन-आँगन की
कुटिया को
जगमग उजास से भर देना।





लेखिका परिचय

रजनी कुलश्रेष्ठ

जन्म : 17 जनवरी .1956, मथुरा (उ प्र)

शिक्षा : एम ए, एम एड , शोधकार्यरत

स्वर्णपदक : राजस्थान राज्य स्तरीय अध्यापन प्रति
राज्यस्तरीय, मण्डल स्तरीय पत्रवाचन प्रति. में प्रथम भिती पत्रिका, निवन्ध, कविता पाठ में प्रथम।

सम्मान : लायन्स क्लव लेकसिटी द्वारा शिक्षक - सम्मान, सैमीनार-लगभग - 24 में संभागिता।

सम्बद्धता/ माध्यम :
"इन्द्रधनुष", "युगधारा", "साहित्य परिषद्", "साहित्यिकी", आकाशवाणी विस्तार निदेशालय, SIERT, साहित्य अकादमी, आदि।

विशिष्ट : अध्ययन क्षेत्र- हिन्दी ध्वनियों का ध्वनि वैज्ञानिक विश्लेषण।

प्रसारण आकाशवाणी उदयपुर से कविता, कहानी, परिचर्चा, वार्ता एव कम्पीयरिंग, अभिनव, उद्घोषिका के रूप मे स्वरचित नृत्य नाटिका एव जिला स्तरीय कार्यक्रम की उद्घोषणा

सम्पादन · "प्रज्ञा" एव "प्रतिविम्ब"

सम्प्रति : व्याख्याता हिन्दी, राजस्थान महिला गेल्डा, सीनि. उ. मा. विद्यालय,
उदयपुर (राज) 313 001